आदर्श देश–भक्त

(हिन्दी)

॥ श्रीहरिः ॥

विषय-सूची

॥ श्रीहरिः ॥

दादाभाई नौरोजी

बम्बईमें ४ सितम्बर सन् १८२५ ई० को एक प्रतिष्ठित पारसी कुलमें दादाभाईका जन्म हुआ। उनके पिताका परलोकवास उनकी चार वर्षकी अवस्थामें ही हो गया; किंतु उनकी माताने उनकी शिक्षाकी समुचित व्यवस्था की। अपनी प्रखर प्रतिभाके कारण शिक्षा समाप्त होनेपर दादाभाई बम्बईमें ही प्रोफेसर हो गये। अध्यापनके समय ही वे समाज-सेवाके कामोंमें लग गये थे। समाजमें नैतिक सदाचारकी स्थापना हो और जागृति आये, इस उद्देश्यसे उन्होंने कई संस्थाओंकी स्थापना की। एक गुजराती साप्ताहिक पत्रका भी वे सम्पादन करते थे।

१८५५ ई० में अध्यापन कार्य छोड़कर व्यापारिक उद्देश्यसे उन्हें इंगलैंड जाना पड़ा। वहाँ स्वतन्त्र देशमें पहुँचते ही अपने देशकी गरीबी और पराधीनताका उन्हें अनुभव हुआ। तभीसे वे स्वदेशकी गरीबी दूर करने और परतन्त्रताकी बेड़ियाँ शिथिल करनेके प्रयत्नमें लग गये।

उस समयतक देशमें वर्तमान राजनीतिका जन्म भी नहीं हुआ था। १८५७ ई० में जो देशभरमें स्वतन्त्रताका संघर्ष हुआ और जिसे 'गदर' नाम दिया गया, दादाभाई उसके सम्पर्कमें नहीं आये थे। वे तो उस राजनीतिके जन्मदाता पिता हैं, जिसे आगे जाकर कांग्रेसने अपनाया। लंदनमें दादाभाईने भारतके पक्षमें प्रचार करनेके लिये 'लंदन इंडियन सोसाइटी' और 'इस्ट इंडियन एसोसिएशन' नामक दो संस्थाएँ स्थापित कीं। पढ़ाईके उद्देश्यसे इंगलैंड गये युवकोंमेंसे उमेश बनर्जी, मनमोहन घोष, फीरोजशाह मेहता आदि युवकोंकी उत्साही टोली दादाभाईके नेतृत्वमें वहाँ भारतके पक्षमें प्रचार करने लगी। दादाभाईने इंगलैंडमें स्थान-स्थानपर भाषण दिये, पत्र-पत्रिकाओंके द्वारा भारतीय स्वराज्यके पक्षमें प्रचार किया। भारतकी गरीबी और नौकर-शाहीके अत्याचारका परिचय इंगलैंडकी जनताको हो जाय, इसका उन्होंने भरपूर प्रयत्न किया।

बीच-बीचमें दादाभाईको भारत आना पड़ता था; किंतु उन्होंने अपना कार्यक्षेत्र इंगलैंडको बना रखा था। भारतीय कांग्रेसकी स्थापना होनेपर वे उसमें सम्मिलित हुए। कांग्रेसके दूसरे ही अधिवेशनके वे सभापति चुने गये। यह अधिवेशन १८८६ ई० में

कलकत्तेमें हुआ। इसके बाद वे १८९३ ई० और १९०६ ई० के कांग्रेस अधिवेशनोंके भी सभापति चुने गये। इसीसे अनुमान किया जा सकता है कि भारतमें उनकी कितनी प्रतिष्ठा थी।

भारतमें ही नहीं, इंगलैंडमें भी दादाभाई नौरोजीका बड़ा सम्मान था। वहाँ वे पार्लियामेंटकी मेम्बरीके चुनावमें खड़े हुए और दूसरी बारके ही प्रयत्नमें सन् १८९२ में पार्लियामेंटके सदस्य चुन लिये गये। इस चुनावमें सम्मिलित होनेका भी उनका उद्देश्य भारतीय गरीबीको दूर करनेके लिये इंगलैंडमें प्रचार करना ही था।

दादाभाईका पूरा जीवन अपने देशके उत्थानके लिये प्रयत्न करनेमें लगा। देशकी सेवाके लिये उनकी लेखनी लगी रही। वे कांग्रेसके 'वृद्ध-पितामह' कहे जाते हैं। कांग्रेसकी स्थापनासे ४० वर्ष पूर्वसे वे लोकसेवा तथा स्वराज्यको लक्ष्य बनाकर कार्य करनेमें लग गये थे।

३० जून १९१७ ई० को ९२ वर्षकी अवस्थामें बम्बईके पासके अपने निवास-स्थानमें उन्होंने देह-त्याग किया।

दादाभाई नौरोजीकी शिक्षा

अपना सुख ही देखो मत तुम।
अपनी सुविधा लेखो मत तुम॥
पशु भी यह तो कर लेता है।
खाता, पीता सो लेता है॥
देखो अपने चारों ओर।
कितनी बढ़ी गरीबी घोर॥
हैं जन कितने ही असहाय।
दुर्बल, अवश और निरुपाय॥
उनका दुख कैसे हो दूर।
कैसे सुख पायें भरपूर॥
कुछ सोचो कुछ करो उपाय।
सुनो पीड़ितोंकी भी हाय॥
हों स्वतन्त्र जो अब हैं दास।
खिले बदनपर उनके हास॥
इसे लक्ष्य कर लो तुम अपना।
यही बनाओ अपना सपना॥
मानवताको उठो जगाओ।
दया और उद्यम अपनाओ॥
हारो मत हिय हो उद्योग।
सदा सफलता-साहस-योग॥

सर फीरोजशाह मेहता

दादाभाई नौरोजीने इंगलैंड पहुँचकर वहाँ भारतीय गरीबी और नौकरशाहीके अत्याचारका परिचय देना प्रारम्भ कर दिया था। भारतको स्वराज्य मिलना चाहिये, इस बातके पक्षमें इंगलैंडकी जनताको वे करना चाहते थे और इसके लिये पूरा प्रयत्न कर रहे थे। फीरोजशाह मेहता उस समय युवक थे और अध्ययनके लिये इंगलैंड गये थे। वे स्वयं पारसी थे और बम्बईके प्रतिष्ठित पारसी कुलके थे, इसलिये दादाभाईसे इनका परिचय शीघ्र हो गया। दादाभाई नौरोजीके कार्यमें इन्होंने योग देना प्रारम्भ किया। स्वदेशकी कंगालीका अनुभव और उसे दूर करनेके लिये प्रयत्न करनेकी शिक्षा इन्हें लंदनमें ही प्राप्त हुई।

बम्बईमें सर फीरोजशाह मेहता जनता और सरकार दोनोंकी दृष्टिमें ही अत्यन्त सम्मानित व्यक्ति थे। सम्पन्न होनेके साथ वे गम्भीर विद्वान् थे। कांग्रेसकी स्थापना और उसकी नीतिको स्थिर करनेमें इनका प्रधान हाथ था।

कलकत्तेके कांग्रेसके छठे अधिवेशन (सन् १८९०)-के ये सभापति हुए। इन्होंने कांग्रेसके प्रतिष्ठित सदस्योंका ध्यान इस ओर आकर्षित किया कि जनसाधारणके कष्टोंको शासकोंके सामने लाना चाहिये और उसे दूर करनेका प्रयत्न करना चाहिये। उस समयतक कांग्रेस केवल शिक्षित-वर्गकी संस्था मानी जाती थी। उसे जनसाधारणकी सेवापर ध्यान देना चाहिये, यह प्रेरणा सर फीरोज-शाहने ही दी थी।

कई वर्षतक सर फीरोजशाह कांग्रेसके मुख्य कर्णधारोंमें रहे। कमेटियों, शिष्टमण्डलों तथा प्रतिनिधि-मण्डलोंका वे प्रायः नेतृत्व करते रहे। १९०७ में सूरत कांग्रेसके समय आपने नरम दलका नेतृत्व किया।

सर फीरोजशाह वैध आन्दोलनमें विश्वास करते थे। उनका मत था कि सरकारी अधिकारियोंको समझाकर न्याय एवं देशके लिये सुविधा प्राप्त करनी चाहिये। सन् १९०९ में कांग्रेसके लाहौर अधिवेशनके वे सभापति चुने गये थे; किंतु किसी संस्थामें नेतृत्वको लेकर परस्पर कटुता हो और इसी कारणसे देशसेवाके कार्यमें बाधा पहुँचे, यह उन्हें पसन्द नहीं था। अतः अधिवेशनसे ६ दिन

पहले उन्होंने सभापतित्व करना अस्वीकार कर दिया था।

इसके बाद सर फीरोजशाहने व्यक्तिगतरूपसे समाज-सेवाका अपना प्रयत्न जारी रखा। कांग्रेसकी राजनीतिमें भाग लेनेके बदले समाजके उत्थानके लिये व्यावहारिक प्रयत्न करना उन्होंने पसंद किया और जीवनभर उसीमें लगे रहे।

सर फीरोजशाह मेहताकी शिक्षा

जन्म लिया हमने जिस भूपर।
बड़े हुए पल करके जिसपर॥
जन्मभूमि वह भारत माता।
है हम सबकी अपनी माता॥
उसकी सेवा धर्म हमारा।
यही पुण्यतम कर्म हमारा॥
किंतु न हो इसमें अभिमान।
पदकी लोलुपताका ध्यान॥
करें न आपसमें संघर्ष।
चाहें यदि अपना उत्कर्ष॥
सुखी बने यह भारतवर्ष।
हमें इसीमें पावन हर्ष॥
सेवा करें शक्तिभर अपनी।
सुखी बने यह भारत-जननी॥
दीन-दुखी जन दुखसे छूटें।
उनके संकट-बन्धन टूटें॥
रहे हमारा लक्ष्य सदा यह।
करें सभी उद्योग सदा यह॥
इससे सफल बनेगा जीवन।
होगा अपना अन्तर पावन॥

सुरेन्द्रनाथ बनर्जी

कलकत्तेमें सन् १८४८ ई० में सुरेन्द्रनाथका जन्म हुआ। उनके पिता श्रीदुर्गाचरण बनर्जी कलकत्तेके एक प्रख्यात डॉक्टर थे। सुरेन्द्रनाथकी शिक्षाका बड़ा उत्तम प्रबन्ध हुआ। बी० ए० पास होनेके बाद वे आई० सी० एस० करने इंगलैंड भेजे गये और वहाँसे लौटनेपर सिलहट (आसाम)-में मजिस्ट्रेट नियुक्त हुए। लेकिन गोरे अधिकारियोंके द्वेषके कारण इस पदसे उन्हें पृथक् होना पड़ा। भरण-पोषणके लिये उन्होंने प्रोफेसरी स्वीकार की।

अध्यापन-कार्यके साथ सुरेन्द्रनाथने युवकोंमें स्वदेश-भक्ति जाग्रत् करना प्रारम्भ किया। अपनी असाधारण वक्तृत्व-शक्तिके कारण शीघ्र वे कलकत्तेके शिक्षित समाजके प्रिय बन गये। उन्होंने कुछ उत्साही जनसेवकोंके सहयोगसे 'इंडियन एसोसिएशन' नामकी संस्था स्थापित की। सभी प्रान्तोंके राजनीतिक प्रतिनिधि बुलाकर अखिल भारतीय राजनीतिक सम्मेलन करनेका उद्योग भी उन्होंने ही 'इंडियन नेशनल कान्फ्रेंश' नामसे प्रारम्भ

किया। इस प्रकारके दो अखिल भारतीय सम्मेलन कांग्रेसकी स्थापनासे पूर्व उनके प्रयत्नसे हुए। देशभरका दौरा करके राजनैतिक जागृति उत्पन्न करनेकी परिपाटी भी उन्होंने ही डाली। उनके देशव्यापी दौरेने जन-साधारणमें राजनीतिके प्रति रुचि उत्पन्न की और पूरे देशके लोग राजनीतिक उद्देश्यसे संगठित होनेकी आवश्यकताका अनुभव करने लगे।

कांग्रेसकी स्थापना होनेपर सुरेन्द्रनाथ उसके प्रमुख कर्णधारोंमें माने जाने लगे। बंगालके वही नेता थे। इसके पहले ही वे 'बंगाली' पत्रका सम्पादन भार उठा चुके थे और अदालतके अन्यायकी आलोचना करनेके कारण दो महीने जेलमें भी रह चुके थे। अंग्रेज सरकारके काले कानूनोंका विरोध करनेके कारण वे भारतके राजनीतिक क्षेत्रमें प्रख्यात हो चुके थे। पूना कांग्रेसके ग्यारहवें अधिवेशनके वे सभापति चुने गये और फिर १९०२ ई० में अहमदाबाद अधि-वेशनके सभापतिका सम्मान भी उन्हें प्राप्त हुआ। इसी बीच वे बंगालकी प्रान्तीय धारा सभाके सदस्य भी रहे।

सन् १९०५ में जब अंग्रेजी सरकारने बंगालको

दो भागोंमें बाँटनेकी घोषणा की तो 'बंग-भंग' विरोधी आन्दोलन' का नेतृत्व सुरेन्द्रनाथने ही किया। उन्होंने ही स्वदेशी अपनाने और विदेशीके बहिष्कारका आन्दोलन चलाया, जो आगे भारतीय राजनीतिका महान् शस्त्र सिद्ध हुआ। पुलिसकी लाठियों, संगीनों तथा जेलके भयका सामना करके 'वन्देमातरम्' की सार्वजनिक घोषणा उन्होंने की और उनके आह्वानपर सहस्रों युवक आन्दोलनमें सम्मिलित हो गये। 'स्वदेशीकी शपथ' उन्होंने ही चलायी। अंग्रेज सरकारको अन्ततः 'बंग-भंग' को रद्द करना पड़ा।

यह सब होकर भी सुरेन्द्रनाथ कांग्रेसमें नरम दलके नेताओंमें थे। कांग्रेससे पृथक् होकर जब नरम दलके नेताओंने १९१८ ई० में 'लिबरल फेडरेशन' की स्थापना की तो उसके पहले अधिवेशनके सभापति सुरेन्द्रनाथ ही हुए।

माटेंगू-चेम्सफोर्ड सुधारोंको नरम दलके नेताओंने स्वीकार कर लिया था। उसके अनुसार सुरेन्द्रनाथने बंगालकी प्रान्तीय कौंसिलमें मन्त्रीका पद स्वीकार कर लिया। सन् १९२१ में सरकारने उन्हें 'सर' की उपाधि दी।

६ अगस्त सन् १९२५ को सतहत्तर वर्षकी

अवस्थामें उनका देहावसान हुआ। उनके-जैसे प्रभावशाली वक्ता किसी भी देशमें गिने-चुने होते हैं। सफल वक्ता होनेके साथ वे उत्साही, देशभक्त एवं महान् कार्यकर्ता थे।

सुरेन्द्रनाथ बनर्जीकी शिक्षा

जिसे न प्यारा अपना देश।
जिसे न प्यारा अपना वेश॥
वह मुनष्य केवल भू-भार।
हुआ जन्म उसका बेकार॥
हो स्वदेश उन्नत-सम्पन्न।
रहे देशमें ही धन-अन्न॥
इससे वस्तु विदेशी त्याग।
करो स्वदेशीसे अनुराग॥
जिसे स्वदेशीपर अभिमान।
जिसे देशका है सम्मान॥
सच्ची मानवता है उसमें।
देश-प्रेम बसता है जिसमें॥
करें प्रतिज्ञा हम सब लोग।
हमें स्वेदेशी ही प्रिय भोग॥
सभी विदेशी वस्तु त्याग कर।
लेंगे देशी वस्तु राग कर॥
रहे देशका धन निज देश।
गौरव भरा स्वदेशी वेश॥
हम स्वदेशके लिये जियेंगे।
हम स्वदेशके लिये मरेंगे॥

सर आशुतोष मुखर्जी

मुखर्जी यह बंगाली ब्राह्मणोंकी उपाधि है। मुखोपाध्यायका ही बँगला अपभ्रंश मुखर्जी है, जैसे वन्द्योपाध्यायका बनर्जी। आशुतोषके पिता डॉक्टर गंगाप्रसादजी कलकत्तेके सर्वसम्मानित नागरिकोंमें थे। सन् १८६५ ई० में आशुतोषका जन्म हुआ। एक सम्मानित कुलके अनुरूप ही आपकी शिक्षा हुई। बचपनसे ही इनकी बुद्धि अत्यन्त तीव्र थी। गणितशास्त्र, पदार्थविज्ञान तथा कानूनके तो आप सर्वश्रेष्ठ विद्वान् थे ही, संस्कृत, इतिहास आदिके भी मर्मज्ञ थे।

इन्होंने पहले कलकत्ता हाईकोर्टमें वकालत की। सन् १९०० के लगभग इन्होंने कलकत्ता विश्वविद्यालयके प्रतिनिधिकी हैसियतसे बंगीय व्यवस्थापक सभामें प्रवेश किया। सन् १९०३ में बड़े लाटकी व्यवस्थापक सभाके सदस्य हुए। इनकी सर्वतोमुखी प्रतिभासे सभी प्रभावित थे। सन् १९०४ में आप कलकत्ता हाईकोर्टके विचारपतिके पदपर आसीन हुए और अन्तमें आप चीफ जस्टिस

(मुख्य न्यायाधीश) बने। इनकी न्यायप्रियताकी सर्वत्र ख्याति हुई।

सन् १९०५ से १९१४ तक नौ वर्ष आप कलकत्ता विश्वविद्यालयके वाइस चांसलरके पदको सुशोभित करते रहे। इस समय इन्होंने शिक्षा-सुधार-सम्बन्धी बहुत-से महत्त्वपूर्ण कार्य किये। कुछ समयतक आप प्रसिद्ध एशियाटिक सोसायटीके सभापति रहे। नवद्वीपके विद्वानोंने आपको 'सरस्वती' की उपाधिसे विभूषित किया। 'कलकत्ता साहित्य-सभा' और 'बंगीय-साहित्य-परिषद' से भी आपका बड़ा सम्बन्ध रहा और उनके सभापति-पदपर आप प्रतिष्ठित हुए। आपकी सदाशयता और विद्वत्ताका सर्वत्र आदर था। इसीसे सन् १९१७ में सिंहलस्थ बौद्धोंकी महास्थविर-मण्डलीने भी आपको 'सम्बुद्धागम चक्रवर्ती' की उपाधिसे सम्मानित किया था। सरकारने भी आपको 'सर' की उपाधि देनेमें गौरवका बोध किया था।

भारत तथा यूरोपीय विद्वानोंमें भी सर आशुतोषका अत्यधिक आदर था। विद्यार्थियोंकी आपके यहाँ भीड़ लगी रहती थी। अंग्रेज, अफसर, राजे-महाराजे और देशी-विदेशी विद्वान् आपसे मिलने

आया करते थे। कितने विद्यार्थियोंका पालन और शिक्षण इनके गुप्त-दानसे होता था—इसका कुछ ठिकाना ही नहीं है।

जहाँ राजनीतिक नेता भारतको राजनीतिक अधिकार दिलानेके प्रयत्नमें लगे थे, वहीं सर आशुतोष देशकी विद्या एवं वैज्ञानिक ज्ञानको उन्नत करनेका महत्त्वपूर्ण कार्य सम्पन्न कर रहे थे। इनके व्यक्तित्वके कारण ही कलकत्ता विश्वविद्यालय उन्नति कर सका। अनेक वैज्ञानिकोंको आपने प्रोत्साहन देकर आगे बढ़ाया। आपके दानसे अनेकोंका शिक्षण एवं अन्वेषण-कार्य पूरा होता रहा।

हाईकोर्टकी जजी छोड़नेके बाद सर आशुतोष पटना रहने लगे थे। वहीं २५ मई सन् १९२४ को आपका शरीर छूटा। पूरे देशने शोक मनाया उस महापुरुषके वियोगमें। वायसरायकी कौंसिलसे लेकर कचहरियों-तक शोककी बंदी मनायी गयी।

सर आशुतोष मुखर्जीकी शिक्षा

पाकर धन या पद अधिकार।
मानो ईश्वरका आभार॥
करो न मन झूठा अभिमान।
यह तो तुच्छोंका अज्ञान॥
भूलो मत अपना आचार।
छोड़ो मत धार्मिक व्यवहार॥
अपना धर्माचरण महान्।
उससे ही होगा कल्याण॥
मिला तुम्हें जो है अधिकार।
धन, विद्या या पदका भार॥
वह सब है प्रभुका उपहार।
सेवाका तुमको अधिकार॥
करो सभीका जन-हित दान।
जन-सेवा प्रभु-सेवा मान॥
करो बड़ोंका आदर मान।
विद्याका फल यही महान्॥
श्रद्धा, सदाचार, उपकार।
यही ज्ञानके शुभ उपहार॥
वह ज्ञानी जो इस पथ जाये।
जीवनमें इनको अपनाये॥

लोकमान्य
बालगंगाधर तिलक

महाराष्ट्रके कोंकण प्रदेशमें रत्नगिरी स्थानमें २३ जुलाई सन् १८५६ को लोकमान्य तिलकका जन्म हुआ। इनके पिता गंगाधरराव स्थानीय पाठशालामें अध्यापक थे। तिलक बचपनसे ही तर्कशील एवं प्रचण्ड मनोवृत्तिके थे। पिताने उन्हें सुन्दर-सुन्दर धार्मिक श्लोक अक्षरज्ञानसे पूर्व ही कण्ठ करा दिये थे। उन श्लोकोंका तिलकके जीवनपर बड़ा प्रभाव पड़ा। वकालत पास करनेपर भी वकालतके काममें असत्यका व्यवहार देखकर उन्होंने अध्यापन कार्य पसंद किया।

देशकी पराधीनता तिलकको सदा व्याकुल करती रहती थी। १८९१ ई० में उन्होंने 'केशरी' और 'मराठा' नामक पत्रोंका सम्पादन प्रारम्भ किया। 'स्वाधीनता हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है।' यह लोकमान्यका सिद्धान्त-वाक्य था। वे इस बातमें विश्वास नहीं करते थे कि प्रार्थना करनेसे हमें अंग्रेज स्वतन्त्र कर देंगे। उनकी लेखनीमें अपूर्व शक्ति थी। महाराष्ट्रमें उन्होंने नये जीवनका संचार

किया। सन् १५९५ में वे बम्बई-धारा-सभाके सदस्य चुने गये; किंतु अंग्रेज सरकार उनसे घबराने लगी थी। उनपर क्रान्तिकारियोंको उभाड़नेका दोष लगाया गया और सन् १८९७ में उन्हें डेढ़ वर्षकी सजा दी गयी।

जेलसे सजा पूरी होनेपर जब लोकमान्य छूटे—फिर देशके युवकोंको संगठित करनेमें लग गये। महाराष्ट्रमें 'गणेश उत्सव' और 'शिवाजी-जन्मोत्सव' मनानेकी प्रथा उन्हींकी चलायी है। कांग्रेस प्रार्थना करनेकी नीति छोड़ दे, इसके लिये उन्होंने पूरा संघर्ष किया और अन्तमें उनका गरम दल सफल हो गया। नरम दलके नेताओंको कांग्रेससे हट जाना पड़ा।

महात्मा गान्धी कहा करते थे—'फीरोजशाह मेहता मेरे लिये हिमालय पर्वतके समान अगम्य हैं और लोकमान्य तिलक अथाह समुद्र हैं। केवल गोखले ही मेरे लिये गंगाके समान हैं।' लोकमान्य तिलककी विद्वता सचमुच समुद्रके समान ही गम्भीर थी।

सनातन-धर्मका प्रचार, गोवध-निषेध, शिवाजीका-सा राष्ट्रीय-भाव, विद्यार्थियोंमें देशप्रेम एवं व्यायामका प्रचार और गीताकी महत्ताका व्याख्यान—

ये लोकमान्यके प्रमुख आन्दोलन थे। उनके प्रभावसे उन दिनों क्रान्तिकारी युवक गीताकी पुस्तक लेकर फाँसीके तख्तेपर चढ़ते थे। सरकारने सन् १९०२ ई० में उन्हें फिर गिरफ्तार किया और देशसे बाहर मांडले (ब्रह्मा) भेज दिया। वहीं जेलमें उन्होंने 'गीता-रहस्य' लिखा। जेलसे लौटनेपर 'होमरूल' आन्दोलनमें वे लग गये।

पहले जर्मन-युद्धमें महात्मा गान्धीजीने अंग्रेजोंको सहायता देनेका प्रस्ताव कांग्रेसमें पास कराया। लोकमान्य तिलकने उसका घोर विरोध किया था। महात्माजी और पूरे देशने पीछे देख लिया कि तिलककी राय कितनी सत्य थी।

३१ जुलाई १९२० ई० को बम्बईमें तिलकका शरीर छूटा। उनके शरीरको समुद्रतटपर पहुँचाने पाँच लाख जनताकी भीड़ गयी। कहते हैं—एक मुसलमान युवक लोकमान्यके वियोगसे व्याकुल होकर उनकी जलती चितामें कूद पड़ा था।

लोकमान्यकी लोकप्रियता उनके पदके अनुरूप ही थी। भारतीय स्वाधीनता-आन्दोलनके वे ही सच्चे जनक थे। देशके प्राणोंमें स्वाधीनताकी माँग उन्होंने ही जाग्रत् की।

लोकमान्य तिलककी शिक्षा

रहे स्वतन्त्र देश यह प्यारा।
जन्मसिद्ध अधिकार हमारा॥
पर स्वतन्त्रता भीख नहीं है।
माँगेसे वह मिली कहीं है?॥
वह चाहती विमल बलिदान।
शूरोंका ही वह वरदान॥
देश हमारा गौरवमय है।
मिला विश्वको यहीं अभय है॥
यहीं कृष्णने गीता गायी।
यहीं उन्होंने गाय चरायी॥
गीताकी शिक्षा अपनाओ।
गोरक्षामें चित्त लगाओ॥
याद करो गौरवको अपने।
सत्य बनेंगे वे शुभ सपने॥
हो तन पुष्ट, करो व्यायाम।
हो मन पुष्ट, हृदय घनश्याम॥
ज्ञान पुष्ट गीताकी शिक्षा।
चरित पुष्ट शुभ धार्मिक दीक्षा॥
तुमसे हो गौरवमय देश।
तुमसे उज्ज्वल इसका वेश॥

गोपालकृष्ण गोखले

महाराष्ट्रके रत्नगिरि जिलेके चिलूण तालुकेका काटलुक गाँव गोखलेकी जन्मभूमि है। उनका जन्म ९ मई सन् १८६६ ई० को हुआ। जब वे केवल १३ वर्षके थे, उनके पिता कृष्णरावका देहान्त हो गया। घरका सारा भार उनके बड़े भाईपर पड़ा। घरकी आर्थिक दशा इतनी खराब थी कि गोपालराव रातको पढ़नेके लिये दिया जलानेको भी पैसे नहीं पाते थे। उन्हें सड़कपर लगी बत्तियोंके नीचे बैठकर पढ़ना पड़ता था। अपनी प्रखर बुद्धिके कारण अठारह वर्षकी अवस्थामें ही बी० ए० पास करके वे अध्यापक हो गये। अध्यापनका कार्य करते हुए भी उन्होंने अध्ययन जारी रखा और वकालत पास की।

आरम्भमें युवक गोपालकृष्ण गोखलेपर लोकमान्य तिलकके व्यक्तित्वका बहुत बड़ा प्रभाव पड़ा। वे 'मराठा' में लेख लिखने लगे और तिलक तथा आगरकरकी प्रेरणासे वकालतका मोह छोड़कर 'डेक्कन एजूकेशन सोसायटी' में अध्यापनकार्य

उन्होंने अपना लिया। तिलक और आगरकरके साथ वे कई वर्षोंतक इस संस्थामें अध्यापक रहे। किंतु महादेव गोविन्द रानाडेके परिचयमें आनेपर गोखलेने उनको ही अपना गुरु बनाया। राजनीतिके क्षेत्रमें रानाडे नरम नीतिके समर्थक थे, अतः गोखले भी इसी नीतिके अनुसार चलने लगे। रानाडे गम्भीर अध्ययनशील विद्वान् थे। गोखलेको उन्होंने सरकारी प्रशासनके जटिल विषयोंके अध्ययनमें लगाया। रात-दिन श्रम करके गोखले कानून एवं प्रशासन सम्बन्धी जटिल विषयोंके मर्मज्ञ हो गये।

सन् १८८९ में कांग्रेसके बम्बई अधिवेशनमें गोखले पहले-पहल सम्मिलित हुए। इसके बाद कांग्रेसमें उनका प्रभाव बढ़ता ही गया। वे नरम दलके नेता हो गये। १९०५ ई० में काशीमें होनेवाले कांग्रेसके इक्कीसवें अधिवेशनके वे अध्यक्ष चुने गये। इससे पहले ही सन् १८९९ में बम्बई लेजिस्लेटिव कौंसिलके वे सदस्य चुन लिये गये थे। इसके एक वर्ष बाद ही सर फीरोजशाह मेहताके रिक्त स्थानपर वाइसरायकी 'लेजिस्लेटिव कौंसिल' के सदस्य चुने गये और आजीवन उसके सदस्य रहे।

वाइसरायकी कौंसिलमें अत्याचारी कानूनों एवं भारी करोंका उन्होंने बड़े प्रभावपूर्ण ढंगसे विरोध

किया। इंगलैण्डके पत्रकार कहने लगे थे—'गोखलेकी टक्करका राजनीतिज्ञ आज इंगलैण्डमें नहीं है।' इतनी गम्भीर योग्यता थी गोखलेकी।

किंतु गोखलेकी महानता राजनीतिज्ञ होनेसे भी अधिक उनकी सत्यनिष्ठा, सादगी और लोकोपकारमें थी। वे इतने सहनशील थे कि विरोधियोंद्वारा कड़ी-से-कड़ी आलोचना होनेपर भी धीर एवं शान्त बने रहते थे।

४९ वर्षकी अवस्थामें १९ फरवरी १९१५ ई० को गोखलेका परलोकवास हुआ। उनके सम्बन्धमें लोकमान्य तिलकने कहा था—'सचमुच वे भारतके हीरे, महाराष्ट्रके रत्न और देशभक्तोंके शिरोमणि थे।' महात्मा गान्धीजीके मनमें गोखलेके प्रति अत्यन्त आदरका भाव था। वे गोखलेको ही अपना राजनीतिक प्रेरक मानते थे।

गोपालकृष्ण गोखलेकी शिक्षा

सादा जीवन, उच्च विचार।
यही सभी शिक्षाका सार॥
करो परिश्रम चित्त लगाकर।
यदि जगमें जाना है कुछ कर॥
करो बड़ोंका आज्ञा-पालन।
यह महान् जीवनका साधन॥
जिसमें श्रद्धा नहीं महान्।
जिसमें अपने सुखका ध्यान॥
प्रिय श्रम नहीं बना जिस मनमें।
सफल न होगा वह जीवनमें॥
घबराओ मत, लगे रहो तुम।
धैर्य रखो, बस, जुटे रहो तुम॥
रहो सत्यको ही अपनाये।
चाहे संकट कितना आये॥
उत्तेजित मत हो तुम कभी।
झेलो आये झंझा सभी॥
थक जायेगी स्वयं विपत्ति।
दूर हटेंगी सब आपत्ति॥
सत्य, धैर्य, श्रम जहाँ उदार।
वहीं, सफलता, विजय अपार॥

महामना
पण्डित मदनमोहन मालवीय

तीर्थराज प्रयागमें २५ दिसम्बर सन् १८६१ को पण्डित मदनमोहनजीका जन्म हुआ था। उनके पिता पण्डित श्रीव्रजनाथजी पक्के सनातनधर्मी और भगवद्भक्त थे। श्रीमद्भागवतकी कथा ही उनकी आजीविका थी और बिना कथा कहे दान लेनेके वे कठोर विरोधी थे। ऐसे आस्तिक भगवद्भक्त माता-पिताका प्रभाव संतानपर होना ही था। श्रीमदनमोहनजीको श्रीमद्भागवतका अनुराग पैतृक सम्पत्तिके रूपमें मिला।

पिताने पहले मदनमोहनजीको संस्कृतकी शिक्षा दिलवायी। अंग्रेजीकी शिक्षा उन्हें तब प्रारम्भ करायी गयी, जब पिताको यह विश्वास हो गया कि इनका अपने धर्म, अपनी संस्कृतिविषयक ज्ञान पुष्ट हो गया है। इसका फल यह हुआ कि उच्च अंग्रेजी शिक्षा भी मालवीयजीके आचार-विचारमें कोई दोष नहीं ला सकी।

सनातनधर्मकी मालवीयजी साक्षात् मूर्ति थे। उनमें यह हिंदू-आदर्श कूट-कूटकर भरा था कि

आचारमें संयमी होना चाहिये और विचारमें उदार। मालवीय परिवारसे बाहरके किसी व्यक्तिके हाथका कच्चा भोजन वे नहीं करते थे। महात्मा गान्धीके साथ गोलमेज परिषद्के समय विलायत गये तो उनके साथ गंगाजल, मिट्टी और गौ भारतसे गयी। वहाँसे लौटनेपर समुद्र-यात्राका उन्होंने सविधि प्रायश्चित्त किया। इतना होनेपर भी वे विचारोंमें अत्यन्त उदार थे। कोई दूसरा भी उनके समान आचारनिष्ठ बने, यह दबाव उन्होंने किसीपर कभी नहीं डाला।

अतिथि-सत्कार और गौ-ब्राह्मणकी सेवा मालवीयजीकी श्रद्धाके प्रतीक थे। उनके घरका चूल्हा सूर्योदयसे आधीराततक जलता रहता था। प्रत्येक आगतको भोजन करके जानेका वे आग्रह करते थे। ब्राह्मणोंकी सेवा और गो-सेवाकी उन्होंने प्राणपणसे चेष्टा की। पुराणोंमें उनकी इतनी श्रद्धा थी कि वे कहा करते थे—'मैं पुराणोंकी सत्यताके सम्बन्धमें प्रत्येक समय शास्त्रार्थ करनेको तैयार हूँ।'

हिंदू-विश्वविद्यालयकी स्थापना एक ऐसी बात थी कि एक धनहीन व्यक्ति ऐसा स्वप्न देखे तो उसकी हँसी ही होगी। कोई विश्वास नहीं कर सकता था कि एक निर्धन ब्राह्मण अकेले उद्योग करके इतनी बड़ी संस्था स्थापित कर देगा। किंतु

मालवीयजीके उद्योगने उस स्वप्नको प्रत्यक्ष बना दिया। विश्वके प्रथम श्रेणीके विश्वविद्यालयोंमें हिंदू-विश्वविद्यालय माना जाने लगा।

कालाकाँकर-नरेशकी प्रेरणासे मालवीयजी राजनीतिमें आये थे। वे एकमात्र ऐसे राजनीतिक नेता थे, जिनका देशके सभी वर्गोंपर प्रभाव था। महात्मा गान्धीजी उन्हें अपना बड़ा भाई मानते थे। कांग्रेसके वे प्रमुख कर्णधार थे और हिंदू-महासभाके तो संस्थापक ही थे। राजा-महाराजा तथा सम्पन्नलोग गुरुकी भाँति उनका आदर करते थे। सरकारी अधिकारी भी उन्हें अत्यन्त आदरकी दृष्टिसे देखते थे। सत्याग्रह-अन्दोलनके समय मालवीयजीको गिरफ्तार करनेसे सरकार बचना ही चाहती थी।

मालवीयजीका एक संदेश था—'प्रत्येक हिंदूके घरमें एक गाय हो। प्रत्येक गाँवमें अखाड़ा हो। प्रत्येक हिंदू बलवान् बने।'

एक सच्चा मनुष्य, एक आदर्श हिंदू, एक उत्कृष्ट महापुरुष मालवीयजीके रूपमें भारत-भूमिपर आया और १२ नवम्बर सन् १९४६ को चला गया। हिंदू आदर्श, सदाचार और सादगीकी मूर्ति थे वे महामना मालवीय।

महामना मालवीयकी शिक्षा

हिंदू-युवक बनें बलवान्।
इसमें भारतका कल्याण॥
बनें पुष्ट-तन कर व्यायाम।
दृढ़ संगठन शक्तिका धाम॥
गोपालन अपनायें सादर।
गो-रक्षामें बनें न कायर॥
गो-रक्षा भारतकी रक्षा।
रहे हृदयमें दृढ़ यह शिक्षा॥
हो सबसे उदार व्यवहार।
किंतु संयमित हो आचार॥
अपनी भाषा, अपना वेश।
प्रिय निज धर्म और निज देश॥
यही सही आदर्श महान्।
इसमें ही सबका कल्याण॥
करो किसीसे मत तुम द्वेष।
किंतु तजो मत अपना वेश॥
अपनाओ दृढ़ अपना धर्म।
करो शुद्ध सात्त्विक शुभ कर्म॥
स्मरण करो निशि-दिन भगवान्।
जीवन-फल हरिभक्ति सुजान॥

महात्मा गाँधी

महात्माजीका नाम है मोहनदास और गाँधी उनकी जातीय उपाधि है। उनके पिताका नाम कर्मचन्द था। इसलिये महात्माजी अपना पूरा नाम मोहनदास कर्मचन्द गाँधी लिखते थे। उनका जन्म गुजरातमें २ अक्टूबर सन् १८६९ को हुआ।

महात्माजीके पिता बड़े प्रतिष्ठित थे। उनकी माता बड़ी ही सुशीला एवं धार्मिक थीं। माता-पिताके द्वारा बचपनमें ही महात्माजीको वैष्णवताके संस्कार मिले। उनकी धायने उन्हें बताया था कि 'अँधेरेमें राम-नाम लेनेसे डर नहीं लगता।' यह राम-नाम महात्माजीके जीवनका आधार बन गया। सत्यप्रेम तो बचपनसे ही महात्माजीके स्वभावमें घर कर गया था।

रघुपति राघव राजा राम। पतित पावन सीताराम॥

—यह भगवन्नाम मातासे उन्हें मिला और जीवनभर इसका वे कीर्तन करते रहे। 'रामायण', 'गीता' और 'नरसी' के पदोंका परिचय भी बाल्यावस्थामें ही उन्हें प्राप्त हो गया था।

भारतमें शिक्षा पूरी करके महात्माजी बैरिस्टरी पास करने विलायत गये और बैरिस्टर होकर लौटनेपर बैरिस्टरी करने ही दक्षिण अफ्रीका गये थे। किंतु वहाँ गोरोंद्वारा भारतीय लोगोंपर जो अत्याचार किये जाते थे, वे उनसे देखे नहीं गये। उन अत्याचारोंका उन्होंने विरोध किया। सत्याग्रहका मार्ग अफ्रीकामें ही उन्होंने अपनाया।

'अन्यायका विरोध करना चाहिये; किंतु अन्यायीके प्रति मनमें दुर्भाव नहीं आने देना चाहिये, उससे सच्ची सहानुभूति रखना चाहिये'—यह सिद्धान्त उन्होंने बनाया। सत्य और अहिंसाका महान् संदेश उन्होंने विश्वको दिया उन्होंने अत्याचार सहते हुए भी शान्त रहकर दिखा दिया कि अहिंसा दुर्बलोंका नहीं, बलवानोंका शस्त्र है। अफ्रीकामें गोरोंने एक बार तो उन्हें अधमरा ही कर दिया था। एक गोरेकी मारसे ही उनके दो अगले दाँत टूटे। किंतु उनकी अहिंसा अन्तमें विजयिनी हुई। अंग्रेजोंने ही उनकी भूरि-भूरि प्रशंसा की।

अफ्रीकासे भारत आनेपर महात्माजी कांग्रेसके सूत्रधार हो गये। वे कांग्रेससे अनेक बार सर्वथा पृथक् रहे; किंतु सदा कांग्रेसका संचालन उनके द्वारा ही हुआ। प्रथम जर्मन युद्धमें उन्होंने सरलभावसे

सरकारकी सहायता की; किंतु उसके बदले जब सरकार दमनपर तुल गयी, तब महात्माजीने असहयोग आन्दोलन छेड़ दिया।

उस समयतक देशमें पूरी जागृति नहीं हुई थी। लोग अहिंसाके मार्गको समझ नहीं सके थे। हिंसाको भड़कते देखकर वह आन्दोलन महात्माजीने स्थगित कर दिया। फिर सन् १९३० में नमक कानून भंग करके सत्याग्रह-आन्दोलनका उन्होंने नेतृत्व किया। अन्ततः उनकी तपस्या सफल हुई। भारतने अहिंसाके मार्गसे स्वाधीनता प्राप्त करके विश्वको एक नवीन मार्ग दिखाया।

देशका यह दुर्भाग्य ही था कि ३० जनवरी सन् १९४८ को एक उतावले युवकने इन्हें गोली मार दी और भारतका राष्ट्रपिता इस लोकसे चला गया।

अत्यन्त सादा जीवन तथा श्रमिकों एवं दीनजनोंके साथ रहकर श्रम करते हुए उनको उन्नत बनानेकी व्यावहारिक शिक्षा महात्मा गाँधीने देशको दी। भारतीय प्राचीन सभ्यता एवं ग्रामीण जीवनकी प्रेरणा जो उनके द्वारा देशको मिली, उसे यदि हम अपना सकें तो सचमुच देशका वास्तविक हित हो।

महात्मा गाँधीकी शिक्षा

करो किसीसे भी मत द्वेष।
करो सभीसे प्रेम अशेष॥
सहो किंतु मत अत्याचार।
उसका करो उचित प्रतिकार॥
लेकिन रहे अहिंसामय वह।
सदा ध्यानमें रखना है यह॥
अत्याचारीसे भी प्रेम।
मनसे उसका चाहो क्षेम॥
सह लो उसके क्रूर प्रहार।
रहे नम्र अपना व्यवहार॥
हृदय बदलना विजय तुम्हारी।
झुके स्वयं ही अत्याचारी॥
सत्य-अहिंसाको अपनाओ।
जगमें सुख-शान्ति फैलाओ॥
रहो सादगीसे तुम आप।
करो परिश्रम तुम चुपचाप॥
दीनोंमें देखो भगवान्।
उनकी सेवाका हो ध्यान॥
जो करता है पर उपकार।
पाता वही सत्यका द्वार॥

विश्वकवि
रवीन्द्रनाथ ठाकुर

जोड़ासाकूके विशाल भवनमें ७ मई सन् १८६१ ई० को रवीन्द्रनाथजीका जन्म हुआ। वे महर्षि देवेन्द्रनाथ ठाकुरके सबसे छोटे पुत्र थे। ठाकुर-परिवारपर लक्ष्मी और सरस्वती दोनोंकी कृपा थी। ब्रह्मसमाजकी विचारधाराका तो यह परिवार केन्द्र ही था। एक ओर राजा-नवाबोंकी शान-शौकत और दूसरी ओर दर्शन, साहित्य, कला, राष्ट्रोद्धार, समाजसेवा आदिकी प्रबल प्रवृत्ति—ये दोनों बातें इस परिवारकी विशेषताएँ थीं। 'गुरुदेव' इसी वातावरणमें पले। सेवकोंका उनके ऊपर इतना निरीक्षण रहता था कि थोड़ी भी स्वतन्त्रता बचपनमें उन्हें नहीं मिली। इस बन्धनके कारण वे चिन्तनशील-हो गये। अद्भुत-अद्भुत कल्पनाएँ बचपनमें ही करने लगे।

परिवार खूब बड़ा था। भाई-बहिन आदि सब-के-सब साहित्य और कलाके प्रेमी थे। इस समाजमें पलकर 'गुरुदेव' बचपनमें ही कवि हो गये। ग्यारह वर्षकी अवस्थामें ही वे पुराने पदोंके अनुकरणपर

तुकबंदियाँ करने लगे थे। चार-पाँच वर्षोंमें ही वे गीत, नाटक, कहानी, उपन्यास, निबन्ध, आलोचना आदि सभी कुछ लिखने लगे। बँगला-साहित्यकारोंका ध्यान उसी समय उनकी ओर आकृष्ट हो गया।

पाश्चात्यशिक्षाके प्रभावसे रहित एक आदर्श आश्रम स्थापित करनेके विचारसे 'गुरुदेव' अपनी पत्नीके साथ अपने पूर्वपुरुषोंकी साधनभूमि 'शान्तिनिकेतन' आ गये। सन् १९०१ में वहाँ 'बोलपुर ब्रह्मचर्याश्रम' की स्थापना हुई। यही आश्रम पीछे अन्ताराष्ट्रीय संस्था 'विश्वभारती' बना। इसकी स्थापनाके लिये 'गुरुदेव' को महान् त्याग करना पड़ा। अपना पुरीका मकान, बहुमूल्य आभूषण तथा पुस्तकेंतक बेचकर उन्होंने आश्रमकी कठिनाई दूर की।

१९१२ ई० में उन्होंने विलायतकी यात्रा की। इससे पूर्वके पाँच वर्षोंमें ही उनकी महान् रचनाएँ, 'खेमा' 'प्रायश्चित्त', 'गीतांजलि', 'गोरा' आदि लिखी गयी थीं। इस यात्रामें आयरिश कवि यीट्सने उनकी 'गीतांजलि' की ओर पाश्चात्य विद्वानोंका ध्यान आकर्षित किया। फलतः 'नोबेल-पुरस्कार' से उसे सम्मानित करके पश्चात्य विद्वानोंने गुरुदेवको 'विश्वकवि' स्वीकार किया।

बंग-भंगके समय गुरुदेव राष्ट्रीयनेताके रूपमें कार्यक्षेत्रमें आये। किंतु वे सच्चे कवि थे। आन्दोलनका कोलाहलभरा वातावरण उनके अनुकूल नहीं था, इससे उनका शीघ्र तटस्थ हो जाना स्वाभाविक था। किंतु 'देशप्रेम' तो उनका जीवन था। सत्याग्रह-आन्दोलनसे पहले ही 'धनंजय वैरागी' के रूपमें सत्याग्रहके आदर्शकी कल्पना वे देशको दे चुके थे।

'विश्वबन्धुत्व' ही उनका आदर्श था। संकुचित राष्ट्रीयतासे उन्हें सदा घृणा रही। भारतकी स्वाधीनताका आन्दोलन उनकी दृष्टिमें मानवमात्रकी स्वाधीनताकी पुकारका एक अंग था। उन्होंने प्रायः प्रतिवर्ष संसारके विभिन्न देशोंकी यात्रा की। प्रत्येक देशके विद्वानोंने उनका असाधारण सम्मान किया।

८१ वर्षकी अवस्थामें ७ अगस्त १९४१ ई० को विश्वकी संकीर्ण राष्ट्रीयताके कारण संघर्षमय वातावरणमें 'एकत्व' तथा 'विश्वबन्धुत्व' का संदेश देनेवाला वह महापुरुष इस धरासे उठ गया।

विश्वकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुरकी शिक्षा

सभी जगत् प्रभुका है देह।
सबपर सम है उसका स्नेह॥
गड़े पैरमें काँटा भारी।
दुखी देह होगी यह सारी॥
वैसे ही जगके सब देश।
सुखी, शान्त, स्वाधीन सुवेश॥
रहें तभी आनन्द अपार।
निन्दनीय कटुता-व्यवहार॥
एक राष्ट्रको अपना मान।
औरोंसे फिर झगड़ा ठान॥
बहुत बुरा करना संघर्ष।
होगा कहीं न इससे हर्ष॥
देश, जाति या रंगका भेद।
करे द्वेष यह अतिशय खेद॥
सब मनुष्य भाई-भाई हैं।
यही भाव शुभ सुखदायी हैं॥
करो भेद सब मनसे दूर।
हो एकत्व यहाँ भरपूर॥
करें सभीका हम सम्मान।
हमें सुमति यह दें भगवान्॥

पण्डित मोतीलाल नेहरू

विश्व कवि श्रीरवीन्द्रनाथ ठाकुर और पण्डित श्रीमोतीलाल नेहरूका जन्म एक ही दिन ७ मई सन् १८६१ को हुआ था। श्रीमोतीलालजीकी माता अपने पति पण्डित गंगाधर नेहरूकी मृत्युके बाद अपने बड़े पुत्रके साथ आगरे आ गयी थीं और यहीं मोतीलालजीका जन्म हुआ। परिवारका भार मोतीलालजीके बड़े भाई नन्दलालजीपर पड़ा। आगरेसे जब हाईकोर्ट इलाहाबाद आया, तब नन्दलालजी भी इलाहाबाद आ गये। वहाँ वे सर्वश्रेष्ठ वकीलोंमें माने जाते थे।

पण्डित मोलीलालजीने पहले फारसीकी शिक्षा पायी। इसके बाद वे हाईस्कूलमें भर्ती हुए और वकालत पास करके जब वे अपने बड़े भाईके स्थानपर प्रयागमें वकालत करने लगे, तब उनकी इतनी प्रसिद्धि हो गयी थी कि उनकी गणना भारतके सर्वश्रेष्ठ वकीलोंमें होने लगी। उनकी आमदनी लाखोंकी थी। उनका 'आनन्दभवन' उन दिनों राजाओंके महलोंके समान सजा रहता था।

पण्डित मोतीलालजीकी सबसे बड़ी विशेषता यही थी कि वे अपनेको समयके अनुकूल बना लेनेमें समर्थ थे। उनकी प्रतिभा और कार्यक्षमता दोनों ही अद्‌भुत थीं। अत्यन्त शौकीनीका जीवन उन्होंने बिताया और अत्यन्त त्यागका भी जीवन उन्होंने अपनाया।

सन् १८८८ के इलाहाबादके होनेवाले कांग्रेस-अधिवेशनमें वे पहले-पहल सम्मिलित हुए। शीघ्र ही वे कांग्रेसके नरम दलके नेताओंमें मिल गये और उनमें प्रमुख माने जाने लगे। जब कांग्रेस-पर नरम दलका प्रभुत्व हुआ, तब मोतीलालजी उस दलमें प्रधान माने जाते थे। सन् १९०९ में वे युक्तप्रान्तकी कौंसिलके सदस्य निर्वाचित हुए। किंतु जब लोकमान्य तिलक तथा एनी बेसेंटने 'होमरूल' आन्दोलन चलाया, तब अपने प्रान्तमें पण्डित मोतीलालजी उसके प्रधान नेता होकर सम्मिलित हुए। प्रथम महायुद्धकी समाप्तिपर पंजाबमें जलियाँवाला बागका हत्याकाण्ड होनेपर पण्डित मोतीलाल नेहरू अन्य नेताओंके साथ वहाँ पहुँचे और वहींसे वे राजनीतिमें खुलकर भाग लेने लगे। अमृतसर कांग्रेस-अधिवेशनके वे सभापति चुने गये। एक वर्ष बाद गान्धीजीके नेतृत्वमें

असहयोग-आन्दोलन प्रारम्भ हुआ और उसमें सम्मिलित होकर वे जेल गये।

असहयोग-आन्दोलन बंद होनेपर उन्होंने कौंसिलमें प्रवेश करके वहाँ सरकारी नीतिमें अड़ंगा लगानेका समर्थन किया। उन्होंने और देशबन्धु चित्तरंजन दासने मिलकर 'स्वराज्य दल' की स्थापना की। यद्यपि उनके इस कार्यका कांग्रेसमें प्रबल विरोध हुआ, फिर भी वे अपने निश्चयपर स्थिर रहे। असेम्बलीके लिये वे निर्विरोध चुने गये।

सन् १९२८ में कलकत्तेके कांग्रेस-अधिवेशनके वे सभापति थे। इसी अधिवेशनमें अंग्रेज सरकारको चुनौती दी गयी कि एक वर्षमें औपनिवेशिक स्वराज्य न दिया गया तो पूर्ण स्वाधीनताकी घोषणा होगी। अन्तमें वह दिन भी आया—लाहौर कांग्रेसने पूर्ण स्वाधीनताकी घोषणा की। गान्धीजीने सत्याग्रह प्रारम्भ किया और उनकी गिरफ्तारीके बाद पण्डित मोतीलालजीने देशका नेतृत्व सँभाला। सरकारने उन्हें भी गिरफ्तार किया। किंतु जेलमें बहुत अधिक बीमार होनेके कारण वे बिना शर्त छोड़ दिये गये।

पण्डित मोतीलालजीका स्वास्थ्य गिरता जा रहा था। किंतु गान्धी-इर्विन समझौतेके सम्बन्धमें

नेताओंके विचार-विमर्शमें वे बराबर भाग लेते रहे। उन्होंने कहा—'भारतका भाग्य-निर्णय' 'स्वराज्य-भवन' में करो, मेरे सामने करो। मातृभूमिके आखिरी सम्मानपूर्ण फैसलेमें मुझे भाग लेने दो।' किंतु समय हो चुका था—उन्हें चिकित्साके लिये लखनऊ ले जाना पड़ा और वहीं ६ फरवरी सन् १९३१ को राष्ट्रका यह प्रकाशमय दीपक बुझ गया।

पण्डित मोतीलाल नेहरूकी शिक्षा

तब मत भूलो पाकर धनको।
तब मत भूलो पाकर पदको॥
देश तुम्हें जब रहा पुकार।
मातृभूमि जब करे गुहार॥
चिन्ता क्या यदि धन जायेगा।
सोचो मत संकट आयेगा॥
यह सब तो कायर करते हैं।
कीड़ोंसे वे ही मरते हैं॥
तुम मनुष्य हो, त्याग करो तुम।
संकटका शुभ भाग वरो तुम॥
अटल रहो निश्चयपर अपने।
टल जायेंगे संकट कितने॥
बढ़े चलो कर्तव्य-मार्गपर।
दृढ़ साहस-उत्साह हृदय धर॥
दूर हटेंगी सब बाधाएँ।
स्वयं मिलेंगी बढ़ सुविधाएँ॥
मत देखो तुम उनकी ओर।
पकड़े रहो त्यागका छोर॥
देश तुम्हें ही रहा निहार।
सुनो! सुनो! कर्तव्य-पुकार॥

लाला लाजपतराय

अपने ननिहाल ढोंडी ग्राममें २८ जनवरी सन् १८६५ को लाजपतरायका जन्म हुआ। उनके पिता लाला राधाकृष्णराय विद्यालयोंके निरीक्षक थे। उनका घर लुधियाना जिलेके जगरावाँमें था। लाजपतरायकी शिक्षाका प्रबन्ध बहुत उत्तम ढंगसे हुआ। मुख्तारी पास करके वे लाहौरमें मुख्तारी करने गये। वहीं आर्य-समाजके नेता गुरुदत्तजीसे उनका परिचय हुआ। आर्य-समाजका लाला लाजपतरायपर बड़ा गम्भीर प्रभाव पड़ा। आगे चलकर तो वे आर्य-समाजके प्रमुख नेता हो गये।

२३ वर्षकी अवस्थामें लाला लाजपतराय कांग्रेसमें सम्मिलित हुए। कांग्रेस-मंचसे हिंदीमें पहला प्रभावशाली भाषण उन्हींका हुआ था। नरम दलकी नीतिको वे 'चापलूसीकी नीति' मानते थे। लोकमान्य तिलकके गरम दलमें वे सम्मिलित हो गये। सन् १९०५ में वे कांग्रेस-शिष्टमण्डलके सदस्य होकर लन्दन गये थे। वहाँसे लौटनेपर लोकमान्य तिलककी नीतिका प्रचार करनेके कारण सरकार उनसे चिढ़

उठी। सन् १९०७ में सरकारने देशनिकाला देकर उनको मांडले जेल (ब्रह्मा)-में भेज दिया।

मांडले जेलसे छूटकर लालाजी इंगलैण्ड चले गये थे। वहाँसे लौटकर सन् १९०९ में महामना मालवीयजीके सहयोगसे उन्होंने हिंदू-महासभाकी स्थापना की। राष्ट्रीयनेता होनेके साथ ही वे सदा हिंदू-धर्मके सेवक रहे। उन्होंने स्वाधीनताका अर्थ ही माना हिंदू-धर्म, हिंदू-संस्कृति एवं हिंदुस्तानकी स्वाधीनता। हिंदू-संगठनके लिये वे सदा उद्योग-शील रहे।

जब महात्मा गान्धीजीका दक्षिण अफ्रीका सत्याग्रह चल रहा था, तब लालाजीने प्रचुर धन भेजकर महात्माजीकी सहायता की। उस सत्याग्रहके सम्बन्धमें ही शिष्टमण्डल लेकर वे इंगलैण्ड गये। किंतु प्रथम जर्मन युद्ध प्रारम्भ होनेपर अंग्रेज सरकारने उन्हें भारत लौटनेका आज्ञा-पत्र नहीं दिया। इससे लालाजी इंगलैण्डसे अमेरिका चले गये। वहाँसे उन्होंने 'यंग-इंडिया' पत्र निकालकर भारतीय स्वाधीनताके पक्षमें प्रचार करना प्रारम्भ किया। पंजाब हत्याकाण्डका समाचार पाकर उन्होंने ब्रिटिश सरकारकी बड़ी कड़ी आलोचना की।

अन्ततः लालाजीको भारत लौटनेकी आज्ञा

मिली। भारत आते ही वे असहयोग-आन्दोलनमें सम्मिलित हो गये। सन् १९२१ में असहयोग-आन्दोलनमें भाग लेनेके कारण उन्हें डेढ़ वर्षकी सजा हुई। इस प्रकार कांग्रेस आन्दोलनमें पूर्णतया भाग लेते हुए भी वे हिंदू-महासभाके लिये तत्परता-पूर्वक कार्य करते रहे।

सन् १९२८में अंग्रेज सरकारने साइमन कमीशन भेजा। कांग्रेसने उसका बहिष्कार किया। लालाजी लाहौरमें उस कमीशनके प्रति होनेवाले विरोध-प्रदर्शनका नेतृत्व कर रहे थे। पुलिसने विरोध करने-वालोंके शान्त जुलूसपर लाठी-वर्षा प्रारम्भ की। लालाजी पीछे हटनेवाले शूर नहीं थे। उन्हें बहुत अधिक चोट आयी। एक अंग्रेज सार्जेंटकी लाठी इतने घातकरूपमें लगी कि उसीसे राष्ट्रीय आन्दोलन एवं हिन्दू-संगठनका यह कर्णधार १७ नवम्बर सन् १९२८ को इस लोकसे विदा हो गया।

लाला लाजपतरायकी शिक्षा

हिंदू-धर्म उठे फिर जाग।
खुलें तभी भारतके भाग्य॥
परम पुनीत सभ्यता वैदिक।
श्रेष्ठ पूज्य शिक्षा है वैदिक॥
वह फिरसे भारत अपनाये।
विश्व ज्योति उससे ही पाये॥
तब समझो भारत स्वाधीन।
जब उज्ज्वल संस्कृति प्राचीन॥
अतः हिंदुओ ! अब भी जागो।
तुम अपना यह आलस त्यागो॥
करें संगठन हम सब मिलकर।
आपसकी दुर्बलता तजकर॥
अपनायें ऋषियोंका शुभ पथ।
बढ़े समुन्नति-पथ-भारत-रथ॥
मिले विश्वको पावन ज्ञान।
सच्ची शिक्षा त्याग महान्॥
आज संगठन परम प्रबल है।
आज संगठनमें ही बल है॥
हों संगठित सभी हिंदूजन।
उन्नत होगा तब जग-जीवन॥

देशबन्धु चित्तरंजनदास

कलकत्तेके एक प्रसिद्ध ब्राह्मसमाजी परिवारमें ५ नवम्बर सन् १८७० को चित्तरंजन दासका जन्म हुआ। उनके पिता श्रीभुवनमोहन दास कलकत्ता हाईकोर्टके सालीसिटर थे और ब्राह्मसमाजके प्रमुख व्यक्तियोंमें थे। साथ ही वे अच्छे कवि, पत्रकार एवं प्रसिद्ध दानी थे। चित्तरंजनदासको अपेन पिताके ये सभी सद्गुण प्राप्त हुए।

भारतमें शिक्षा समाप्त करके चित्तरंजन दास उस समयके महत्त्वाकांक्षी युवकोंके समान आई० सी० एस० करने इंगलैण्ड गये थे; किंतु वहाँ दादाभाई नौरोजीके प्रचारकार्यमें योग देनेके कारण इन्हें अंग्रेज अधिकारियोंने चुनावमें नहीं लिया। इंगलैण्डसे बैरिस्टर होकर ये स्वदेश लौटे।

पिताकी अत्यन्त दानशीलताके कारण दास-परिवारपर ऋणका इतना बड़ा भार हो गया था कि बैरिस्टर होकर लौटनेपर भी चित्तरंजन दास उसे चुका नहीं सके। प्रारम्भमें उनकी आमदनी भी नगण्य थी। अन्तमें ऋण इतना बढ़ गया कि

पिताके सहित उन्हें दिवालिया होनेकी घोषणा करनी पड़ी।

अर्थ-संकटकी इस अवस्थामें दूसरा कोई भी निराश होकर पागल हो जाता; किंतु श्रीदास तो कविता करनेमें लग गये। उनके कई 'काव्य-संग्रह' और नाटक उन दिनों प्रकाशित हुए। किंतु सन् १९०८ में कलकत्तेके क्रान्तिकारियोंके मुकदमेकी पैरवी करके और उसमें श्रीअरविन्दघोषको निर्दोष सिद्ध करके श्रीदास अत्यन्त प्रसिद्ध हो गये। इस एक घटनाने उन्हें भारतका श्रेष्ठतम बैरिस्टर बना दिया। सरकारी बैरिस्टर उनके तर्कोंसे हतप्रभ हो चुका था उस मुकदमेमें! अब श्रीदास बाबूकी आमदनीका ठिकाना नहीं रहा। किंतु उन्होंने सबसे पहला काम यह किया कि पुराने ऋणको पाई-पाई ब्याजके साथ चुकाया। दिवालिया घोषित होनेके बाद भी जिसीने अपना ऋण पूरा चुकाया— ऐसे ईमानदार श्रीचित्तरंजन दास ही निकले।

बैरिस्टरीकी अत्यधिक आय भी श्रीचित्तरंजन दासके परिवारको कोई बहुत बड़ा धनी बना सकी हो, ऐसा कभी नहीं हुआ। प्रायः जब किसी मुकदमेमें बड़ी आमदनी होनेवाली होती थी, उसे कहाँ-कहाँ किनको सहायताके रूपमें भेजना है,

इसके लिये मनीआर्डर फार्मतक पहले लिखे रहते थे। ऋण लेकर भी गरीबोंको दान करते रहनेका गुण पितासे श्रीदेशबन्धुने सीख लिया था। वे दीनबन्धु थे—उनके-जैसा दानी तो कदाचित् ही कोई सुननेमें आता है। अदालतसे फीसके रुपये लेकर वे चलते और मार्गमें दीनोंको बाँट देते।

श्रीदेशबन्धु दास कांग्रेसमें एक दीप्तिमान् नक्षत्रके समान आये थे; किंतु राजनीतिमें उनका कार्यकाल कुल सात-आठ वर्ष ही रहा। सन् १९१७ में बंगाल प्रान्तीय कांग्रेस-अधिवेशनके वे सभापति चुने गये। उसके बाद तो कांग्रेसमें उनका प्रमुख स्थान हो गया। असहयोग-आन्दोलनका प्रारम्भ होते ही अपनी लाखोंकी आमदनीवाली वकालतको उन्होंने ठोकर मार दिया। उनकी पुकारपर बंगाल एक हो गया और असहयोगमें उनके कारण ही बंगालका स्थान प्रथम रहा। इस आन्दोलनमें वे स्वयं तो जेल गये ही, उनकी पत्नी, बहिन और पुत्र भी गिरफ्तार हुए।

असहयोग-आन्दोलन बंद होनेपर देशबन्धुने 'स्वराज्यदल' की स्थापना की। वे प्रान्तीय और केन्द्रीय कौंसिलोंमें जाकर सरकारका विरोध करनेके पक्षमें थे। बंगाल कौंसिलमें उनके दलके पर्याप्त

लोग चुने गये। देशबन्धुने कौंसिलमें सरकारके विरुद्ध एक सफल मोर्चा बना लिया। साथ ही कलकत्ता कारपोरेशनके भी वे 'मेयर' चुने गये।

देशबन्धु दासका यह देशभक्तिका कार्य अबाधरूपसे चल रहा था; किंतु १९२५ के कांग्रेसके बेलगाँव-अधिवेशनसे लौटते ही वे बीमार पड़ गये। इसी वर्ष जूनके महीनेमें देशबन्धुको कालने देशके बीचसे उठा लिया। उनकी शव-यात्रामें कलकत्तेके तीन लाख व्यक्ति सम्मिलित थे। महात्मा गान्धीने उनकी अरथीको कंधा दिया। महात्माजीने कहा था—'मनुष्योंमेंसे एक देवता आज चला गया।'

देशबन्धु चित्तरंजनदासकी शिक्षा

दीनोंकी सेवा-सत्कार।
दुखियोंसे हो जिसका प्यार॥
दीनबन्धुको है वह प्यारा।
पायेगा वह कृपा-सहारा॥
कैसे हो सबका दुख दूर।
सब ही सुख पायें भरपूर॥
सबके सारे दुख ले लूँ मैं।
सबके सब संकट झेलूँ मैं॥
मेरे पास न अपना है कुछ।
वह प्रभुका, जो वह देता कुछ॥
उसकी वस्तु उसीकी मान।
दीनोंके हितकी वह मान॥
यही समझ कर्तव्य महान्।
कौन इसे बतलाता दान॥
कुछ सहायता कर पाऊँ मैं।
काम किसीके कुछ आऊँ मैं॥
यह तो प्रभुकी कृपा उदार।
ऐसा अवसर ही उपहार॥
सेवा ही पुनीततम कर्म।
सेवा ही है सच्चा धर्म॥

विट्ठलभाई पटेल

गुजरातके खेड़ा जिलेके करमसद गाँवमें १८ फरवरी सन् १८७१ ई० को विट्ठलभाईका जन्म हुआ। यह कुल अपने देशभक्तिके लिये और वीरताके लिये प्रख्यात है। विट्ठलभाईके पिता १८५७ के स्वाधीनता-संग्राममें झाँसीकी रानी लक्ष्मीबाईके सहायक रह चुके थे। पिताकी देशभक्ति उनके पुत्रोंमें भी आयी। विट्ठलभाई पटेल और उनके छोटे भाई वल्लभभाई पटेल—दोनों ही देशके कर्णधार बने।

भारतमें शिक्षा पूरी करके विट्ठलभाई इंगलैण्ड गये और वहाँसे बैरिस्टर होकर लौटे। बम्बईमें उनकी बैरिस्टरी बड़ी शानसे चलने लगी। किंतु १९०८ ई०में धर्मपत्नीका देहान्त होनेके बाद सांसारिक जीवनसे वे उदासीन हो गये। लोकसेवाको उन्होंने अपना लक्ष्य बनाया। कुछ ही दिनोंमें वे बम्बईके प्रमुख नेताओंमें माने जाने लगे। १९१८ ई० में बम्बई कांग्रेस-अधिवेशनके वे स्वागताध्यक्ष चुने गये। इसके एक वर्ष बाद कांग्रेसी-शिष्टमण्डलके सदस्य बनकर वे इंगलैण्ड गये।

बम्बईकी प्रान्तीय असेम्बली और वाइसरायकी कौंसिलमें भी वे सदस्य चुने गये। इन चुनावोंमें भाग लेनेका उनका एकमात्र उद्देश्य असेम्बली या कौंसिलमें जाकर यथाशक्य देशकी सेवा करना ही था। उनकी अद्वितीय प्रतिभा कौंसिलमें ही प्रत्यक्ष हुई और सारे देशका ध्यान उनकी ओर आकर्षित हो गया।

असहयोग-आन्दोलनके समय विट्ठलभाईने कौंसिलका त्याग किया। लेकिन असहयोग स्थगित होनेपर वे 'स्वराज्यदल' के संगठनमें सम्मिलित हुए। कौंसिलमें पहली बार गैरसरकारी अध्यक्ष चुना गया और वे विट्ठलभाई पटेल थे। इससे पहले बम्बई कारपोरेशनमें प्रविष्ट होकर अपनी दृढ़ता और पटुताका वे परिचय दे चुके थे। वहाँ उन्होंने म्युनिसपल कर्मचारियोंके लिये खद्दर पहनना अनिवार्य कर दिया था और वाइसरायको मान-पत्र देनेकी प्रथा बंद कर दी थी।

विट्ठलभाईके समान तेजस्वी कौंसिल-अध्यक्ष फिर दूसरा नहीं हुआ। यह उन्हींका शौर्य था कि गोरे प्रधान सेनापतिको, जिसका पद लगभग वाइसरायके बराबर माना जाता था, बिना किसी हिचकके भूलके लिये फटकार सकते थे। अनेक बार गोरे अधिकारियोंको उनसे क्षमा माँगनी पड़ी। सरकारी पक्ष बार-बार उनसे पराजित हुआ।

राजनीतिमें वे 'चाणक्य' माने जाते थे। सरकारी कौंसिलमें सरकारी पक्षको बार-बार लथेड़ना और उसके अन्यायको स्पष्ट करके देशका गौरव ऊँचा रखना, यह उन-जैसे अद्‌भुत प्रतिभाशाली एवं ओजस्वी पुरुषका ही काम था।

पेशावरके गोलीकाण्डकी जाँच कांग्रेसने करायी। उसकी रिपोर्ट विट्ठलभाईने ही लिखी, पर वह प्रकाशित होनेसे पहले ही जब्त हो गयी। कांग्रेस-कार्यकारिणीके सभी सदस्य गिरफ्तार हो गये, जिनमें विट्ठलभाई भी थे। लेकिन स्वास्थ्य खराब होनेसे सरकारने उन्हें छोड़ दिया। चिकित्सा कराने वे वियना चले गये। भारत लौटनेपर सरकारने उन्हें फिर गिरफ्तार किया। जेलमें वे बीमार हो गये और इसीसे छोड़ दिये गये। उन्हें फिर वियना जाना पड़ा। वियनामें स्वास्थ्य ठीक होनेपर वे अमेरिका चले गये और वहाँ भारतीय स्वतन्त्रताके पक्षमें प्रचार करने लगे। लेकिन उनका स्वास्थ्य फिर खराब हुआ। वियना लौटकर विश्रामके लिये विवश होना पड़ा। वहाँ बीमारीमें भी स्वाधीनता-प्राप्तिकी योजना बनानेमें ही वे लगे थे; किंतु २२ अक्टूबर सन् १९३३ को वहीं विदेशमें ही उनका शरीर छूट गया। अन्तिम क्षणोंमें उन्होंने कहा था—'भारत शीघ्र स्वतन्त्र हो।'

विट्ठलभाई पटेलकी शिक्षा

रखो सदा साहसको मनमें।
हिचको मत रणमें या जनमें॥
देखो मत लोगोंकी ओर।
आवें चाहे संकट घोर॥
रहो सत्यपर डटे हुए तुम।
निश्चयपर स्थिर बने हुए तुम॥
बल विरोधका देख न हारो।
सदा सत्यकी ओर निहारो॥
दूर हटेंगे संकट सारे।
अनुगत होंगे लोग तुम्हारे॥
साहस और त्याग अपनाओ।
सदा सफलता यश शुभ पाओ॥
बिना त्यागके जीवन व्यर्थ।
उद्यम बिना न मिलता अर्थ॥
किंतु अर्थकी यही सफलता।
औरोंकी सेवासे ममता॥
सेवा ही जीवनका फल है।
त्याग सदा सेवाका बल है॥
साहस, त्याग, परिश्रम, आवे।
मानव जीवन धन्य कहावे॥

सरदार वल्लभभाई पटेल

विट्ठलभाई पटेलके छोटे भाई सरदार वल्लभभाई पटेलका जन्म भी अपने करमसद गाँवमें ही ३१ अक्टूबर सन् १८७५ को हुआ। उनका परिवार कृषक कुरमी परिवार था। प्रारम्भिक शिक्षाके बाद उन्होंने वकालत पास की। १९०८ में पत्नीका देहान्त होनेके बाद ही वे विलायत गये और वहाँसे बैरिस्टरी पास करके लौटे। अहमदाबादमें उन्होंने वकालत प्रारम्भ की।

बैरिस्टरके रूपमें प्रख्यात होनेके साथ ही 'गुजरात सभा' के कार्योंमें सम्मिलित होनेके कारण सरदार पटेलका सार्वजनिक जीवन प्रारम्भ हो गया। इसी 'गुजरात सभा' के एक सम्मेलनमें पहले-पहले महात्मा गान्धीजीसे उनकी भेंट हुई। फिर तो वे महात्माजीके परम भक्त बन गये।

महात्मा गान्धीजीके 'खेड़ा सत्याग्रह' में सरदार पटेल एक प्रमुख कार्यकर्ता रहे। असहयोग आन्दोलन प्रारम्भ होते ही उन्होंने बैरिस्टरीको सदाके लिये तिलांजलि दे दी। असहयोग-आन्दोलनमें, वोरसदके 'ताजीरीकर विरोधी सत्याग्रह' में और नागपुरके 'झंडा सत्याग्रह' में सरदारने अपनी अद्भुत नेतृत्व-

शक्तिका परिचय दिया। 'गुजरात विद्यापीठ' की स्थापना उनके ही परिश्रमका परिणाम है।

सबसे प्रसिद्ध एवं विकट विजय मिली सरदार पटेलको अपने 'वारदोली सत्याग्रह' में। यह सत्याग्रह जहाँ उनके शौर्यका प्रतीक है, वहीं यह भी बताता है कि वारदोलीकी जनता किस प्रकार उनके आदेश-पर अपना सर्वस्व न्योछावर करनेको प्रस्तुत थी।

सन् १९३० में सत्याग्रह संग्राम प्रारम्भ होनेपर दूसरे सभी नेताओंके समान सरदार पटेलको भी सरकारने कारागार भेजा। गान्धी-इर्विन संधि होनेपर सन् १९३१ के कराचीके कांग्रेस-अधिवेशनके वे अध्यक्ष चुने गये। एक वर्ष बाद फिर सरकारने दमन प्रारम्भ किया। सरदार पटेलको इस बार लगभग दो वर्ष जेलमें रहना पड़ा।

कांग्रेसने जब कौंसिल-प्रवेशका निश्चय किया तो सरदार पटेल कांग्रेसके 'पार्लामेण्टरी' बोर्डके अध्यक्ष चुने गये। कांग्रेसी मन्त्रिमण्डलोंकी स्थापना तथा कांग्रेस सरकारोंके नियन्त्रणका कार्य उन्होंने बड़ी दक्षतासे सँभाला।

सन् १९४० में फिर व्यक्तिगत सत्याग्रह प्रारम्भ हुआ। सरदार पटेलको जेल जाना ही था; किंतु स्वास्थ्य ठीक न रहनेसे सरकारने उन्हें शीघ्र छोड़ दिया। सन् १९४२ में 'भारत छोड़ो !' आन्दोलनकी कांग्रेसने घोषणा की। सभी कांग्रेस कार्य-समितिके

सदस्य पकड़ लिये गये। लगभग तीन वर्ष अहमदनगरके किलेमें नजरबंद रखनेके बाद वे छोड़े गये। इस नजरबंदीसे छूटते ही सरदार पटेलने 'भारत छोड़ो' के बदले 'एशिया छोड़ो' की ललकार की।

अन्ततः सन् १९४६ ई० में अन्तरिम सरकार बनी। सरदार पटेलने गृहमन्त्रीका पद सँभाला और फिर स्वतन्त्रताकी घोषणा हो जानेपर गृहमन्त्री होनेके साथ देशी राज्यविभाग भी उनके हाथमें आया। समस्त देशी राज्योंको जिस कौशलसे सरदारने भारतमें मिलाया, उसकी प्रशंसा तो इंगलैण्डके कूटनीतिज्ञोंने भी की।

सरदार पटेल 'लौहपुरुष' कहे जाते थे और सचमुच वे अपनी दृढ़तामें 'लौहपुरुष' थे। उनमें प्रभुत्व कूट-कूटकर भरा था। लेकिन उनका प्रभुत्व नृशंस न होकर वात्सल्य-पूर्ण था। जूनागढ़ तथा हैदराबादके उपद्रवोंका दमन करना उनके साहस एवं कर्तव्यनिष्ठाका ज्वलन्त प्रमाण है।

भारतके इस लौहपुरुषके उठ जानेसे पूरे देशने अनुभव किया कि उसका एक प्रबल संरक्षक कालने उससे छीन लिया।

सरदार वल्लभभाई पटेलकी शिक्षा

दृढ़ निश्चय हो दृढ़तर पद हो।
किंतु कदापि न सत्ता मद हो॥
डरना तो कीड़ोंका काम।
नर हो फिर भयका क्यों नाम॥
तुमसे भय भी भागे डरकर।
बढ़े चलो तुम निर्भय होकर॥
विघ्नोंसे घबराना कैसा।
श्रममें लग, थक जाना कैसा॥
टूटें पगके काँटे पगमें।
बढ़े चलें पर हम निज मगमें॥
वीर वही जो बढ़ता जावे।
बाधा-विघ्न देख हर्षावे॥
बढ़े वहाँ उसका उत्साह।
करे नहीं दुखकी परवाह॥
स्थिरनिश्चय पर्वत-सा सुस्थिर।
पीछे कभी न देखे जो फिर॥
रहे लक्ष्यपर दृष्टि निरन्तर।
हो उत्साह और भी सुस्थिर॥
सदा सफलता पाता है वह।
पहुँच लक्ष्यतक जाता है वह॥

नेताजी सुभाषचन्द्र बोस

बंगालके चौबीस परगना जिलेके कोडोलिया गाँवमें २३ जनवरी सन् १८९७ के दिन सुभाषका जन्म हुआ। उनके पिता श्रीजानकीनाथ बोस उड़ीसाकी राजधानी कटकमें सरकारी वकील थे। इसलिये सुभाषका प्रारम्भिक जीवन कटकमें ही बीता।

सुभाष बाबूमें बचपनसे ही आध्यात्मिक साधन करनेकी इच्छा थी। उनकी माताने उन्हें रामायण और महाभारतकी कथाएँ सुनायी थीं। बचपनमें ही वे ध्रुवकी भाँति वनमें जाकर तपस्या करनेकी कल्पना किया करते थे। प्रायः घरमें वे चटाई बिछाकर भूमिपर सोते और एक समय भोजन करते थे। चौदह वर्षकी अवस्थामें ही एक दिन घरसे भाग खड़े हुए। छः महीनेतक काशी, हरिद्वार आदि तीर्थों तथा वन-पर्वतोंमें घूमते रहे। लेकिन कहीं उनके हृदयको संतोष नहीं हुआ।

घर लौटकर वे पढ़नेमें लग गये। बी०ए० होनेके बाद पिताने उन्हें आई०सी०एस० करनेके लिये विलायत भेजा। वहाँ वे परीक्षामें ससम्मान उत्तीर्ण

हुए। लेकिन जब उनको सरकारी उच्च पदपर नियुक्त किया गया तो लन्दनमें ही अपना त्याग-पत्र उन्होंने भारत-मन्त्रीको देते हुए लिखा—'जो सरकार मेरे देशवासियोंपर अत्याचार कर रही है, मैं उसका कोई पद स्वीकार नहीं कर सकता।'

विलायतसे लौटकर सुभाष बाबू सीधे देश-सेवाके क्षेत्रमें उतर पड़े। वे आते ही देशबन्धु चित्तरंजन दाससे मिले और फिर तो देशबन्धु उनके राजनीतिक गुरु हो गये। कलकत्तेमें 'राष्ट्रीय विद्यापीठ' की स्थापना हुई। सुभाष बाबू उसके मुख्याचार्य नियुक्त हुए। युवकोंमें उन्होंने स्वाधीनता-का मन्त्र यहींसे देना प्रारम्भ किया।

पहली बार सुभाष बाबू १९२१ ई० में बंगाल प्रान्तीय स्वयंसेवक दलके सेनापति होनेके कारण गिरफ्तार किये गये। इसके बाद तो जैसे कारागार उनका घर ही बन गया। अंग्रेज सरकारकी दृष्टिमें कांग्रेस नेताओंमें सबसे भयंकर थे। सरकार उनको स्वतन्त्र रहने देना नहीं चाहती थी। उन्हें बिना मुकदमा चलाये कई बार अनिश्चित कालके लिये नजरबंद किया गया।

सन् १९२४ में नजरबंद करके वे माण्डले (ब्रह्मा) भेजे गये। वहाँ बहुत अधिक बीमार हो

जानेपर ही सरकारने दो वर्ष बाद उन्हें छोड़ा। इसके बाद वे औपनिवेशिक स्वराज्यके घोर विरोधी हो गये। उनके ही प्रचण्ड प्रभावके कारण कलकत्ता कांग्रेसने सरकारको चुनौती दी और एक वर्ष बाद लाहौरमें स्वाधीनताको अपना लक्ष्य घोषित किया।

स्वाधीनता-संग्राम छिड़नेके बाद तो सुभाष बाबूको प्रायः जेलमें रहना पड़ा। बार-बार स्वास्थ्यकी खराबीसे सरकार उन्हें छोड़नेके लिये विवश होती थी। चिकित्साके लिये कई बार विवश होकर ही उन्हें वियना जाना पड़ा। गिरते हुए स्वास्थ्यकी दशामें भी वे देशकी स्वाधीनताका संघर्ष करते रहे। कलकत्ता कारपोरेशनके मेयर तो वे तब चुने गये जब जेलमें थे। कांग्रेसके अध्यक्ष-पदपर रहकर उन्होंने जो दृढ़ता दिखायी, उसे देश भूल नहीं सकता। त्रिपुरी कांग्रेसमें वे अध्यक्ष चुने गये महात्माजीका विरोध होनेपर भी। देश उन्हें कितना चाहता था, यह इसीसे ज्ञात होता है।

वर्षों जेलमें बितानेके बाद बहुत थोड़े समय—केवल तीन वर्ष वे बाहर रहे। सन् १९४० में सरकारने उन्हें फिर जेलमें बंद किया। लेकिन जब

अनशन करनेके कारण वे अत्यन्त दुर्बल हो गये तो जेलसे निकालकर उनके मकानमें ही उन्हें सरकारने नजरबंद कर दिया। पुलिसके सतर्क रहते भी सुभाष बाबू मकानसे निकल गये। वेष बदलकर वे अफगानिस्तान होते जर्मनी पहुँच गये। अपने व्यक्तित्वके कारण हिटलरको उन्होंने प्रभावित कर लिया और वहीं 'आजाद सेना' तैयार हुई।

जर्मनीसे पनडुब्बीमें बैठकर वे जापान पहुँचे और जापानसे वर्मा। वर्मामें उन्होंने 'आजाद हिन्द सेना' बनायी। उनकी 'आजाद हिन्द सरकार, सचमुच एक स्वतंत्र सरकार थी। उसका अपना मन्त्रिमण्डल था, अपनी सेना थी और लगभग १५०० वर्गमील क्षेत्रपर उसका शासन था।

दुर्भाग्यसे जापानके युद्धमें पराजित होनेपर सन् १९४५ में सिंगापुरसे जापान जाते समय हवाई दुर्घटनामें सुभाष बाबूका निधन हुआ यह कहा जाता है; लेकिन उनका जयहिन्दका घोष भारतका जयघोष बन गया। भारतकी स्वाधीनता-प्राप्तिमें उनका यह अन्तिम संघर्ष ही सफलताका हेतु बना—इसमें संदेहका कोई कारण ही नहीं है।

नेताजी सुभाषचन्द्र बोसकी शिक्षा

अरे, शान्त क्यों तरुण सुजान!
तुम बलवानोंसे बलवान्॥
करो अग्निका तुम आवाहन।
रहे सदा ज्वालामय जीवन॥
भस्म बने कायरता सारी।
दूर हटे ममता बेचारी॥
बूढ़ा, है वह तरुण नहीं।
जिसमें जाग्रत् प्राण नहीं॥
तुम दीनोंकी सुनो पुकार।
पीड़ित जनकी करुण गुहार॥
उनका कष्ट मिटाने आओ।
उनका संकट दूर भगाओ॥
प्रिय हो तुमको शुभ बलिदान।
यही बहादुरका सम्मान॥
नश्वर जीवन जायेगा यह।
अवसर पुनः न आयेगा यह॥
उठो! बढ़ो! कर लो कुछ काम।
यही सफलताका है धाम॥
कुछ कर जानेकी ले चाह।
उठो, न करो विघ्न-परवाह॥

डॉक्टर श्यामाप्रसाद मुखर्जी

सर आशुतोष मुखर्जीका चरित इसी पुस्तकमें पहले आ चुका है। उनके पुत्र श्रीश्यामा प्रसादजीका जन्म सन् १९०१ में हुआ। पिताकी प्रतिभा, ओजस्विता, धर्मपरायणता आदि सभी सद्गुण पुत्रमें आये।

शिक्षा समाप्त होनपर श्यामाप्रसादजी सन् १९२३ में कलकत्ता विश्वविद्यालयके सदस्य चुने गये और सन् १९३३ में वहाँके उपकुलपति (वाइस चांसलर) नियुक्त हुए। इतनी कम अवस्थामें इस पदपर वे ही नियुक्त हुए थे। सन् १९२९ में ही वे बंगालकी धारा सभाके सदस्य भी चुन लिये गये थे।

उन दिनों बंगालमें मुस्लिम लीगका जोर था। कांग्रेसकी नीति मुसलमानोंको संतुष्ट करनेकी थी। इसका फल यह हो रहा था बहुसंख्यक होकर भी हिंदूजाति उपेक्षित हो गयी। श्रीश्यामाप्रसादजी एक नैष्ठिक हिंदू थे। उनसे यह उपेक्षा सहन नहीं हुई। सन् १९३९ में उन्होंने हिंदूमहासभामें सक्रिय भाग लेना प्रारम्भ किया। वे उसके उपसभापति चुन लिये

गये। बंगालमें उनके प्रभावसे वातावरण ही बदल गया। बंगालके मुस्लिम प्रधान मन्त्रीने उनके प्रभावके आगे सिर झुकाया। श्रीश्यामाप्रसादजी वित्तमन्त्री बनाये गये।

जब महात्मा गान्धीने 'भारत छोड़ो' आन्दोलन प्रारम्भ किया और बंगालके गवर्नरने मन्त्रिमण्डलसे बिना पूछे ही वहाँ दमन प्रारम्भ कर दिया। तो श्यामाप्रसादजीने मन्त्रिमण्डलसे त्याग-पत्र दे दिया। भारतके स्वाधीन होनेपर वे केन्द्रीय सरकारके उद्योगमन्त्री बनाये गये। लेकिन पूर्वी बंगालमें सन् १९५० में जब हिंदुओंपर सामूहिक अत्याचार होने लगे और उनको निर्वासित करनेका षड्यन्त्र पाकिस्तान सरकारने किया, नेहरू-लियाकत समझौता श्यामा-प्रसादजीको अत्यन्त अनुचित जान पड़ा। उनका मत था कि इस समझौतेसे भारतका कोई लाभ नहीं हुआ। उलटे पाकिस्तानमें छूटे हिन्दू वहाँके गुण्डोंकी दयापर छोड़ दिये गये। इस समझौतेके कारण श्रीनेहरूजीसे मतभेद होनेके कारण उन्होंने अपने पदसे त्याग-पत्र दे दिया।

२१ अक्टूबर सन् १९५० को उन्होंने दिल्लीमें ही 'भारतीय जनसंघ' की नींव डाली। दो वर्ष बाद कानपुरमें जनसंघका पहला अधिवेशन हुआ। इस

अधिवेशनने प्रकट कर दिया कि इतने अल्पकालमें यह संस्था कितनी लोकप्रिय बन गयी है।

काश्मीरमें अब्दुल्ला सरकार वहाँकी हिंदू-प्रजापर अत्याचार कर रही थी। जनसंघने काश्मीरमें सत्याग्रह करनेका निश्चय किया। सत्याग्रह प्रारम्भ होते ही सरकारी अत्याचार और भी बढ़ गया। अन्तमें वहाँकी स्थिति स्वयं जाननेके लिये श्यामाप्रसादजीने जानेका निश्चय किया। काश्मीर सरकार नहीं चाहती थी कि वे वहाँ जायँ; किंतु प्रत्येक संकटका सामना करनेका निश्चय करके वे वहाँ गये। काश्मीरकी सीमामें प्रवेश करते ही उन्हें गिरफ्तार करके जम्मू जेलमें भेज दिया गया।

जेलमें डॉ० श्यामाप्रसादजी मुखर्जी बीमार हो गये और समुचित चिकित्साके अभावमें यह हिंदू जागरणका उद्‌दीप्त प्रकाश जेलमें ही २२ जून सन् १९५३ की संध्याको अब्दुल्ला सरकारके अत्याचारकी भेंट हो गया।

डॉक्टर श्यामाप्रसाद मुखर्जीकी शिक्षा

हिंदी, हिंदू, हिंदुस्थान।
यही हमारा लक्ष्य महान्॥
हो जागृत फिर हिंदूजाति।
फैले पुनः जगत्में ख्याति॥
पुनः प्रतिष्ठित हो ऋषि-धर्म।
करें सभी शुचि सुन्दर कर्म॥
हिंदू नहीं अबल असहाय।
हिंदू नहीं कभी निरुपाय॥
है हममें प्रतिभा अभिराम।
शौर्य जागता बल उद्दाम॥
करें पूर्वपुरुषोंका ध्यान।
हो अपने गौरवका भान॥
भारतवर्ष हमारा देश।
सजें देशहित हम गणवेश॥
त्यागें भेदभाव हों एक।
रखें धर्म-मर्यादा टेक॥
बनें 'प्रताप' 'शिवा' आदर्श।
साध्य हमारा धर्मोत्कर्ष॥
लक्ष्य हमारा सदा महान्।
सदा सहायक हैं भगवान्॥